जाते हैं। प्रौढ़ मादा छोटे, मुलायम फलों के छिलके के अन्दर अण्डा देना पसन्द करती है, और अण्डे से ग्रब्स (सूड़ी) निकलकर फलों के अन्दर का भाग खाकर नष्ट कर देते हैं। कीट फल के जिस भाग पर अण्डा देती है वह भाग वहाँ से टेढ़ा होकर सड़ जाता है। ग्रसित फल सड़ जाता है और नीचे गिर जाता है।

नियंत्रण : गर्मी की गहरी जुताई या पौधें के आस पास खुदाई करें ताकि मिट्टी की निचली परत खुल जाए जिससे फलमक्खी का प्यूपा धूप द्वारा नष्ट हो जाये तथा शिकारी पक्षियों को खाने के लिये खोल देता हैं। ग्रसित फलों को इकट्ठा करके नष्ट कर देना चाहिए। नर फल मक्खी को नष्ट करने के लिए प्लास्टिक की बोतलों को इथेनाल, कीटनाशक (डाईक्लोरोवास या कार्बारिल या मैलाथियान), क्यूल्यूर को 6:1:2 के अनुपात के घोल में लकड़ी के टूकड़े को डुबाकर, 25 से 30 फंदा खेत में स्थापित कर देना चाहिए। कार्बारिल 50 डब्ल्यूपी., 2 ग्राम/लीटर या मैलाथियान 50 ईसी, 2 मिली/लीटर पानी को लेकर 10 प्रतिशत शीरा अथवा गुड़ में मिलाकर जहरीले चारे को 250 जगहों पर 1 हे. खेत में उपयोग करना चाहिए। प्रतिकर्शी 4 प्रतिशत नीम की खली का प्रयोग करें जिससे जहरीले चारे की ट्रैपिंग की क्षमता बढ़ जाये। आवश्यकतानुसार कीटनाशी जैसे क्लोरेंट्रानीलीप्रोल 18.5 एससी. @ 0.25 मिली/लीटर या पानी की दर से भी छिड़काव कर सकते हैं।

प्रमुख रोग एवं नियंत्रण

चूर्णील फफूँद : रोग का प्रथम लक्षण पत्तियां और तनों की सतह पर सफेद या धुँधले धुसर दिखाई देती है। कुछ दिनों के बाद वे धब्बे चूर्ण युक्त हो जाते है। सफेद चूर्णी पदार्थ अंत में समूचे पौधे की सतह को ढ़क लेता है। जो कि कालान्तर में इस रोग का कारण बन जाता है। इसके कारण फलों का आकार छोटा रह जाता है।

नियंत्रण : इसकी रोकथाम के लिए रोग ग्रस्त पौधों को खेत में इकट्ठा करके जला देते हैं। फफूँदनाशक दवा जैसे ट्राइडीमोर्फ 1/2 मी.ली./लीटर या माइक्लोब्लूटानिल का 1 ग्राम/10 लीटर पानी के साथ घोल बनाकर सात दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।

मृदुरोमिल फफूँदी : यह रोग वर्षा एवं गर्मी वाली दोनों फसल में होते हैं। उत्तरी भारत में इस रोग का प्रकोप अधिक है। इस रोग के मुख्य लक्षण पत्तियों पर कोणीय धब्बे जो शिराओं पर सीमित होते हैं। ये पत्ती के ऊपरी पृष्ठ पर पीले रंग के होते है तथा नीचे की तरफ रोयेंदार फफूँद की वृद्धि होती है।

नियंत्रण : बीजों को मेटलएक्सल नामक कवकनाशी की 3 ग्राम दवा प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करके बोना चाहिए तथा मैकोंजेब 0.25 प्रतिशत पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए। छिड़काव रोग के लक्षण प्रारम्भ होने के तुरन्त बाद करना चाहिए। संक्रमण की उग्र दशा में साइमक्सानिल + मैंकोजेब 1.5 ग्रा./लीटर या मेटालैक्सिल + मैंकोजेब 2.5 ग्रा./ली. या मैटीरैम 2.5 ग्रा./ली. पानी के साथ घोल बनाकर 7 से 10 दिन के अन्तराल पर 3–4 बार छिड़काव करें। फसल को मचान पर चढ़ाकर खेती करना चाहिये।

फल विगलन रोग : इस रोग से प्रभावित करेले के फलों पर कवक की अत्यधिक वृद्धि हो जाने से फल सड़ने लगता है। धरातल पर पड़े फलों का छिलका नरम, गहरे हरे रंग का हो जाता है। आर्द्र वायुमण्डल में इस सड़े हुए भाग पर रूई के समान घने कवक का जाल विकसित हो जाते है। भण्डारण और परिवहन के समय भी फलों में यह रोग फैलता है।

नियंत्रण : खेत में उचित जल निकास की व्यवस्था करना चाहिये। फलों को भूमि के स्पर्श से बचाने का प्रयत्न करना चाहिए। भण्डारण एवं परिवहन के समय फलों में चोट लगने से बचाऐं तथा हवादार एवं खुली जगह पर रखें।

मोजैक विषाणु रोग: यह रोग विशेषकर नई पत्तियों में चितकबरापन और सिकुड़न के रूप में प्रकट होता है। पत्तियाँ छोटी एवं हरी–पीली हो जाती है। संक्रमित पौधे का ह्रास शुरू हो जाता है और उसकी वृद्धि रूक जाती है। इसके आक्रमण से पर्ण छोटे और पुष्प पत्तियों में बदले हुए दिखाई पड़ते हैं। कुछ पुष्प गुच्छों में बदल जाते हैं ग्रसित पौधा बौना रह जाता है और उसमें फलत बिल्कुल नहीं होता है।

नियंत्रण : इस रोग की रोकथाम के लिए कोई प्रभावी उपाय नहीं हैं। लेकिन विभिन्न उपायों के द्वारा इसकों काफी कम किया जा सकता है। खेत में से रोग ग्रस्त पौधों को उखाड़कर जल देना चाहिए। इमिडाक्लोरोप्रिड 0.3 मी.ली./लीटर का घोल बनाकर दस दिन के अन्तराल में छिड़काव करें।

विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें–

डा. बिजेन्द्र सिंह

निदेशक

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान

पो.बा. नं. 01, पो. आ.– जक्खिनी (शाहँशाहपुर),

वाराणसी–221 305, उत्तर प्रदेश

दूरभाष– 0542–2635236/237/247; फैक्स– 0543–229007

ई–मेलः director.iivr@icar.gov.in वेबः www.iivr.org.in

संकलन– डी.आर. भारद्वाज, सुधाकर पाण्डेय,

केशव कुमार गौतम, ए.बी. राय एवं अशोक कुमार सिंह

प्रकाशक– डा. बिजेन्द्र सिंह, निदेशक,

भा.कृ.अनु.प.–भा.स.अनु.सं., वाराणसी

चतुर्थ संस्करण– 5000 प्रतियाँ, जनवरी 2018

प्रसार पुस्तिका सं. 36/2018

करेला की वैज्ञानिक खेती

भाकृअनुप ICAR

हर कदम, हर डगर किसानों का हमसफर

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agri search with a human touch

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान

शाहँशाहपुर (जक्खिनी),वाराणसी– 221 305, उ.प्र.

करेला की वैज्ञानिक खेती

करेला अपने विशेष औषधीय गुणों के कारण सब्जियों में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसकी खेती भारत वर्ष में खरीफ और जायद दोनों ऋतुओं में समान रूप से की जाती है किन्तु संरक्षित दशा में पूरे वर्ष की जा सकती है। करेले के कच्चे फलों का रस मधुमेय के रोगियों के लिये के लिए भी बहुत उपयोगी है और उच्च रक्त चाप के मरीजों के लिए बहुत लाभदायक होता है। इसमें उपस्थित कडुवाहट (मोमोर्डसीन) मनुष्य के खून को साफ करने में काफी उपयोगी है। वर्तमान में करेला का चिप्स पाउडर, जूस इत्यादि उत्पाद बनाये जा रहे हैं।

जलवायु

लौकी की अच्छी पैदावार के लिए गर्म एवं आर्द्रता वाले भौगोलिक क्षेत्र सर्वोत्तम होते हैं। अतः इसकी फसल जायद तथा खरीफ दोनों ऋतुओं में सफलतापूर्वक उगायी जाती है। किन्तु संरक्षित दशा में पूरे वर्ष की जा सकती है। बीज अंकुरण के लिए 30–35 डिग्री सेन्टीग्रेड और पौधों की बढ़वार के लिए 32–38 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान उत्तम होता है।

भूमि और भूमि की तैयारी

बलुई दोमट तथा जीवांश युक्त चिकनी मिट्टी जिसमें जल धारण क्षमता अधिक तथा पी.एच.मान 6.0–7.0 हो करेला की खेती के लिए उपयुक्त होती है। पथरीली या ऐसी भूमि जहाँ पानी लगता हो तथा जल निकास का अच्छा प्रबन्ध न हो इसकी खेती के लिए अच्छी नहीं होती है। खेत की तैयारी के लिए पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल तथा बाद में 2–3 जुताई कल्टीवेटर से करते हैं। प्रत्येक जुताई के बाद खेत में पाटा चलाकर मिट्टी को भुरभुरी एवं खेत को समतल कर लेना चाहिए जिससे खेत में सिंचाई करते समय पानी कम या ज्यादा न लगे।

उन्नत किस्में

पूसा दो मौसमी : यह किस्म दोनों मौसम (खरीफ व जायद) में बोयी जाती है। कोमल खाने योग्य फल बीज बुआई के लगभग 55 दिन बाद तुड़ाई योग्य हो जाते हैं। फल हरे, मध्यम मोटे तथा 18 से.मी. लम्बे होते हैं।

पूसा विशेष : इसके फल हरे, पतले, मध्यम आकार के तथा खाने में स्वादिष्ट होते हैं। औसतन एक फल का वजन 115 ग्राम होता है। इसकी उपज 11.4–13.0 टन/हे. होती है।

अर्का हरित : इस प्रजाति के फल चमकीले हरे, आकर्षक, चिकने, अधिक गूदेदार तथा मोटे छिलके वाले होते हैं। फल में बीज कम तथा कड़वापन भी कम होता है। इसकी उपज 13.0 टन/हे. होता है।

कल्यानपुर बारह मासी : इस किस्म के फल काफी लम्बे तथा हल्के हरे रंग के होते हैं। यह किस्म खरीफ ऋतु के लिए उत्तम मानी जाती है मचान बनाकर खेती करने पर लम्बे समय तक पौधे पर फल विकसित होते रहते हैं।

खाद एवं उर्वरक

एक हेक्टेयर खेत के लिए 50 कि.ग्रा. नत्रजन, 25–30 कि.ग्रा. फास्फोरस तथा 20–30 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से तत्व के रूप में देनी चाहिए। नत्रजन की एक तिहाई मात्रा, फास्फोरस तथा पोटाश की पूरी मात्रा खेत की तैयारी के समय दें। बची हुई नत्रजन की आधी मात्रा बीज बोने के 30 व 45 दिन बाद जड़ के पास टाप ड्रेसिंग के रूप में देनी चाहिए।

भूमि की तैयारी

खेत की तैयारी के लिए पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से तथा बाद में 2–3 जुताई देशी हल या कल्टीवेटर से करना चाहिए। प्रत्येक जुताई के बाद पाटा चलाकर मिट्टी को भुरभुरी एवं खेत को समतल कर लेना चाहिए।

बीज की मात्रा एवं बुआई

एक हेक्टेयर खेत की बुआई के लिए 5–6 कि.ग्रा. मात्रा की आवश्यकता पड़ती है। एक स्थान पर 2–3 बीज 3–5 सेन्टीमीटर की गहराई पर बोना चाहिए।

बुआई का समय

इसकी बुआई ग्रीष्म ऋतु में 15 फरवरी से 15 मार्च तक तथा वर्षा ऋतु के लिए 15 जून से 15 जुलाई तक करते हैं।

बुआई की दूरी

करेले की बुआई जहाँ तक हो सके मेड़ों पर करनी चाहिए। कतार से कतार की दूरी 1.5 से 2.5 मीटर और पौध से पौध (थाले से थाले) की दूरी 45 से 60 से.मी. रखनी चाहिए। अच्छी प्रकार से तैयार किए गये खेत में 2–5 मीटर की दूरी पर 50–60 से.मी. चौड़ी नाली बनाकर नालियों के दोनों किनारों पर बुआई करते हैं।

सिंचाई

मिट्टी की किस्म एवं जलवायु पर निर्भर करती है। खरीफ ऋतु में खेत की सिंचाई करने की आवश्यकता नहीं होती परन्तु वर्षा न होने पर सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। अधिक वर्षा के समय पानी के निकास के लिए नालियों का होना अत्यन्त आवश्यक है। गर्मियों में अधिक तापमान होने के कारण 4–5 दिन पर सिंचाई करना चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण

वर्षा ऋतु या गर्मी में सिंचाई के बाद खेत में काफी खरपतवार उग आयें हो तो उनको निकाल देना चाहिए अन्यथा तत्व व नमी जो मुख्य फसल को उपलब्ध होना चाहिए बेकार चला जाता है। करेले में पौधे की वृद्धि एवं विकास के लिए 2–3 बार गुड़ाई करना चाहिए।

सहारा देना

करेले की लताओं को लकड़ी का सहारा देने से फल जमीन के सम्पर्क से दूर रहते हैं। इससे फलों का आकार एवं रंग अच्छा रहता है तथा पैदावार भी बढ़ जाती है। इसके लिए प्रत्येक पौधे को सहारा देना चाहिए।

फलों की तुड़ाई एवं उपज

जब फलों का रंग गहरे हरे से हल्का हरा पड़ना शुरू हो जाय तो फलों की तुड़ाई करने के लिए उत्तम माना जाता है। फलों की तुड़ाई एक निश्चित अन्तराल पर करते रहना चाहिए ताकि फल कड़े न हों अन्यथा उनकी बाजार में मांग कम होती है। बोने के 60–75 दिन बाद फल तोड़ने योग्य हो जाते हैं। यह कार्य हर तीसरे दिन करना चाहिए। औसत उपज प्रति हेक्टेयर लगभग 100–150 कुन्तल तक होती है।

प्रमुख कीट एवं नियंत्रण

कद्दू का लाल कीट (रेड पम्पकिन बिटिल): इस कीट का वयस्क चमकीली नारंगी रंग का होता हैं तथा सिर, वक्ष एवं उदर का निचला भाग काला होता है। सूण्ड़ी जमीन के अन्दर पायी जाती है। इसकी सूण्डी व वयस्क दोनों क्षति पहुँचाते हैं। प्रौढ़ पौधों की छोटी पत्तियों पर ज्यादा क्षति पहुँचाते हैं। ग्रब (इल्ली) जमीन में रहती है जो पौधों की जड़ पर आक्रमण कर हानि पहुँचाती है। ये कीट जनवरी से मार्च के महीनों में सबसे अधिक सक्रिय होते है। अक्टूबर तक खेत में इनका प्रकोप रहता है। फसलों के बीज पत्र एवं 4–5 पत्ती अवस्था इन कीटों के आक्रमण के लिए सबसे अनुकूल है। प्रौढ़ कीट विशेषकर मुलायम पत्तियां अधिक पसन्द करते है। अधिक आक्रमण होने से पौधे पत्ती रहित हो जाते है।

नियंत्रण : सुबह ओस पड़ने के समय राख का बुरकाव करने से भी प्रौढ़ पौधा पर नहीं बैठता जिससे नुकसान कम होता है। जैविक विधि से नियंत्रण के लिए अजादीरैक्टिन 300 पीपीएम @ 5–10 मिली/लीटर या अजादीरैक्टिन 5 प्रतिशत @ 0.5 मिली/लीटर की दर से दो या तीन छिड़काव करने से लाभ होता है। इस कीट का अधिक प्रकोप होने पर कीटनाशी जैसे डाईक्लोरोवास 76 ईसी. @ 1.25 मिली/लीटर या ट्राइक्लोफेरान 50 ईसी. @ 1 मिली./लीटर की दर से 10 दिनो के अन्तराल पर पर्णीय छिड़काव करें।

फल मक्खी : इस कीट की सूण्डी हानिकारक होती है। प्रौढ़ मक्खी गहरे भूरे रंग की होती है। इसके सिर पर काले तथा सफेद धब्बे पाये